आदिवासी कविताओं में झाँकता आदिवासी विद्रोह व जीवन–संघर्ष

सलीम अहमद
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ

सारांश

आदिवासियों का लोक साहित्य सदियों से मौखिक रूप में विद्यमान रहा है साहित्य की विधाओं में 'कविता' आदिवासी विमर्ष की दृष्टि से महत्वूपर्ण विधा रही है। आज हिंदी साहित्य संसार में आदिवासी साहित्य द्वेश और आक्रोश वाली उस प्रवृत्ति से अलग है जिसके साथ स्त्री और दलित विमर्श आगे आया है। स्त्रीवादी साहित्य को देखा जाये तो वह सिर्फ स्त्री जाति के हितों और अधिकारों को लेकर चर्चा करता है। वह दलित, आदिवासी, मुस्लिम स्त्रियों की तरफ आँख भौं सिकुड़ता है। दलित साहित्य में भी स्त्री के सवालों को पीछे छोड़ा गया है इसी कारण अलग 'दलित स्त्री विमर्श' की चर्चा होने लगी। इसी सन्दर्भ में यदि हम आदिवासी साहित्य को देखते हैं तो आदिवासी लेखन ने स्त्री और उसके अधिकारों के लिए द्वार खोले हैं यही कारण है कि आदिवासी साहित्य में स्त्री लेखिकाओं ने बडी संख्या में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।)

मुख्य शब्द–*आदिवासी, कविता, आन्दोलन, विद्रोह आदि।*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः
सलीम अहमद,
आदिवासी कविताओं में झाँकता आदिवासी विद्रोह व जीवन–संघर्ष,
शोध मंथन,
दिस0 2017, पेज सं0 102.108,
Artcile No. 18 (SM 658),
http://anubooks.com/?page_id=581

प्रकृति ने संसार के समस्त प्राणियों को सामान बनाया है परन्तु ये प्राणी अपनी स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण प्रकृति के इस नियम का उल्लंघन करते हैं तथा एक दूसरे पर अत्याचार करते हैं। अगर ये कहा जाये कि मानव सबसे क्रूर जीव है तो ये कहना अनुचित नहीं है क्योंकि प्राचीनकाल से ही आर्थिक रूप से मजबूत और सत्ता प्राप्त मानव साधारण मानव पर अत्याचार करता आ रहा है। वर्तमान समय में दास प्रथा तथा सामतंवाद जैसी मनुष्य विरोधी प्रथाएँ तो नहीं रही पर पूँजीवाद ने इनका स्थान ले लिया है जिसके फलस्वरूप तथाकथित मुख्यधारा के स्वार्थी लोगों ने आर्थिक रूप से कमजोर समाज के लोगों पर अत्याचार किया तथा हर तरह से इनका षोशण किया। इन्हीं में से एक है आदिवासी समाज जो आज हर तरह से षोशण का षिकार हो रहा है आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेदों वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणों अंग्रेजों द्वारा दूर–दराज जंगलों और पहाड़ों से भी खदेड़कर शहरों में बंधुआ मजदूर बनने के लिए विवश कर दिया गया। अज्ञानता, पिछड़ेपन, उचित शिक्षा और जागरूकता न होने के कारण यह जनजातिय समाज सदियों से मुख्यधारा से कटता और दूरी बनाता गया। भारत में यह समाज विभिन्न भू–भागो तथा भाषिक प्रदेशों में पाया गया है।

आदिवासियों को साहित्य लिखने की प्रेरणा प्राकृतिक संसाधनों, विभिन्न कलाओं और ऐतिहासिक घटनाओं से मिली है। आदिवासी साहित्यकार अपनी रचनात्मक षक्ति आदिवासी विद्रोह की परपंरा से लेता है। आदिवासी जीवन को व्यक्त करने वाले कवियों ने इतिहास से उपेक्षित आदिवासी नायकों को महत्व देकर नवीन इतिहास सृजन के लिए नयी जमीन तैयार की है बिरसा मुंड़ा इनके लिए आदर्श का प्रतीक हैं बिरसा का मुख्य संघर्ष जमीन, जंगल, और आदिवासी अस्मिता के लिए था। बिरसा का आंदोलन जनजातीय समाज के लिए 'मील का पत्थर' साबित हुआ। बिरसा के योगदान को यह समाज कभी भी नहीं भुला पायेगा। आदिवासी आंदोलन के रूप में रानी गाइदिन्ल्यू ने मणिपुर के आदिवासियों की अस्मिता के लिए संघर्श किया सिनगी दई जैसी वीर योद्धा मुगल सेना के साथ मैदान में अकेले ही लड़ती है।

भारत के विभिन्न प्रदेशो में निवास कर रहे आदिवासियों ने अपने–अपने भू–भागों में अपने अधि ाकारों और अस्तित्व के लिए विभिन्न विद्रोह किये हैं। अंग्रेजो, साहुकारों महाजनों और सूदखोरो के अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध आंदोलन किए। परन्तु आज के समय में विडंबना यह है कि इनके इस विद्रोह को विद्रोह न कहकर नक्सलवाद कहा जाता है। रमणिका गुप्ता आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का विवेचन करते हुए लिखती है, ''जंगल माफिया कीमती पेड़ उससे सस्ते दामों पर खरीदकर, ऊँचे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने के बजाए पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।''[1]

हिन्दी कविता में आदिवासी जीवन को व्यक्त करने वाले प्रमुख कवियों में महादेव टोप्पो, हरीराम मीणा, रामदयाल मुंडा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, रणेन्द्र, अनुज लुगुन, डॉ0 मंजू ज्योत्स्ना, सरिता बड़ाइक, विनोद कुमार षुक्ल, कुमारेनद्र पारसनाथ सिंह, एकांत श्रीवास्तव आदि का नाम विषेश रूप से लिया जाता है। ये कवि अपनी कविताओं के माध्यम से अपना भोगा हुआ यथार्थ और अपने समाज की सामाजिक वैयक्तिक जीवन–संघर्ष की समस्याओं को अभिव्यक्ति देते है। इन कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासी अस्मिता को पहचानने की बात कही है–

- ''ओ रे
- मानवता के आदिम नुमाइंदों,
- तुम जंगली ढ़ोर, गँवार हो
- एक सलाह है तुम्हें सभ्य बनाने की
- रोपना होगा, मुख्यधारा की उर्वरा भूमि पर।''[2]

आदिवासी कविताओं में इस समाज की प्रताड़ित महिलाओं की आत्मा की चीख, पहाड़ों, जंगलो और घाटियों में मदद के लिए पुकारती आवाजें सुनाई देती हैं। स्त्री–भ्रूण हत्या, बलात्कार, भगवान के नाम पर छोड़ देने जैसे कई अमानुशिक व्यवहार उनके साथ हो रहे हैं। आदिवासी स्त्रियों ने पहले से अपने हित और अधिकारों के लिए पुरूष के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया है समय समय इन स्त्रियों ने हाथ में हथियार भी उठा लिए हैं पर इस बात पर दुःख होता है कि आदिवासी वीरागंनाओं को लोग ऐसे याद नहीं करते जैसे झाँसी की रानी को याद करते हैं आदिवासी कविता में स्त्री का चित्रण इसी रूप में हुआ और उसकी वेदना आदिवासी कविता में प्रकट हुई है। निर्मला पुतुल ने अपनी 'अपने घर की तलाश' में 'तुम कहाँ हो माया' षीर्शक कविता में स्त्री की अस्मिता का सवाल उठाया है–

- ''दिल्ली के किस कोने में हो तुम?
- मयूर विहार, पंजाबी बाग या षाहदरा में?
- कनाट प्लेस की किसी दुकान में
- सेल्सगर्ल हो या
- किसी हर्बल कंपनी में पैकर?
- कहाँ हो तुम माया? कहाँ हो?
- कहीं हो भी सही सलामत या
- दिल्ली निगल गयी तुम्हें?''[3]

निर्मला पुतुल ने इस कविता में एक आदिवासी लड़की की व्यथा को व्यक्त किया है जो रोजगार के लिए जब दिल्ली आती है तो उसके साथ सिक तरह का बर्ताव किया जाता है उसे रोजगार दिलाने के नाम पर उसका दैहिक षोशण किया जाता है। इनकी कविता में षोशण के खिलाफ एक तीखा प्रतिरोध का स्वर सुनाई पड़ता है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी स्त्री के जीवन का चित्रण बखूबी ढंग से किया गया है।

डॉ0 मंजू ज्योत्स्ना 'ब्याह' कविता के माध्यम से एक आदिवासी स्त्री के मन में बैठी षादी के बाद की पीड़ा को व्यक्त करती हैं। उन्होने इस कविता में ससुराल में लड़कियों के साथ होने वाले षोशण, अत्याचार, दहेज के लिए जलाए जाने, खेत और घर को संभालने आदि के उदाहरण दिए हैं वह ऐसे समाज का विरोध करती हैं जो स्त्री को सिर्फ चूल्हा और बिस्तर के योग्य समझता है। इसीलिए वह अपने पिता से कहती है–

''पिता मेरी षादी मत करना।

मैंने देखी है–बुधनी की जिन्दगीबाल बच्चे सम्भाल खेत में खटती है उसका मर्द साँझ, सवेरे, रातमारता है कितना।''[4]

सरिता बड़ाइक जी की कविताएँ औरत को मात्र वस्तु न मानकर उसकी आजादी के लिए सपने संजोती हैं उनकी कविताओं में नारी पात्र ग्रामीण परिवेष के साथ अपने अस्तित्व का अलग चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनकी 'मुझे भी कुछ कहना हैं' कविता में वे स्त्री के अस्तित्व का संदेष अपने प्रियवर को देती हैं। एक आदिवासी स्त्री अपने जीवन के हर क्षण को घर के सदस्यों को चूल्हे से लेकर बिस्तर तक खुष रखने में व्यतीत करती है उस जीवन को वह नकारती हैं–

''चूल्हे बिस्तर की परिधि में
मुझे नही है रहना
गऊ चाल में चलकर नही है थकना
मन में भारी है कविता
मंजूर नही है थमना
हे प्रियवरकृकृकृकृकृ''[5]

सरिता जी की कविताओं के बारे में रमणिका गुप्ता कहती है– ''सरिता की मोर पंखी भाशा इतनी बहुरंगी है कि झारखंड के हर तेवर को पकड़ लेती हैं वे न केवल झारखंड के गांवो की धड़कनों को स्वर देती हैं बल्कि झारखंड के हर निवासी की, चाहे वह किसी आयु, स्तर, वर्ग, वर्ण का न हो उनके बिम्ब सरल–सहज षब्दों में खड़ा कर देती है।''[6]

विस्थापन मनुष्य को सांस्कृतिक, मानसिक और भौगोलिक तौर पर बदल देता है। आदिवासी समाज विस्थापन की समस्या से पीढी दर पीढ़ी जूझता आ रहा है आधुनिक काल में तथाकथित मुख्य धारा के लोगों ने इस समाज का तिरस्कार किया, इनको बंदरो सा नचाया, नंगल तस्वीरें खींची इस समाज को अपनी ही जमीन से बेदखल कर दिया गया तथा सरकारी कानून और परियोजनाओं, विदेषी कंपनियों, पुलिस और नक्सलवाद ने इस समुदाय को और घने जंगल में जाने को मजबूर किया। इस विस्थापन के साथ मुख्यधारा के तथाकथित लोग और सभ्य कहा जाने वाला समाज आदिवासी स्त्री देह की गंध से रोमांचित हो जाता है। उसकी तारीफ करते हुए वह उसकी देह को बोचने की कोशिश कर रहा है। लेकिन अब वह सब समझने लगी है। निर्मला पुतुल अपनी कविता के माध्यम से सभ्य समाज के ऐसे व्यक्ति को चेतावनी देती हैं–

''मैं चपु हूँ तो मत समझो की गँगू हूँया की रखा है मैंने आजीवन मौन–व्रत
गहराती चुप्पी के अंधेरे में सुलग रही है भीतर
जो आक्रोष की आग''[7]

आदिवासी साहित्य मुख्य धारा की संस्कृति की परिधि से बाहर रहकर आदिवासियों के जीवन को व्यक्त करने वाला, उनकी संस्कृति, परपंराए, इतिहास को एक स्तर से ऊपर वाला साहित्य है आदिवासी सदियों से जंगलो में रहते आये हैं उन्होने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अपनी आवश्यकतानुसार किया है लेकिन उन्होने कभी भी इन संसाधनों को नुकसान नही पहुंचाया। आज विकास नाम पर प्राकृतिक संसाधनों को उजाड़ जा रहा है जो इन संसाधनों की रक्षा करते थे उनको विस्थापित किया जा रहा है।

आदिवासी अपने आँखो के सामने पेडों को कटने नही देते हैं वे उसका विरोध करते हैं इन सब कारणों से आदिवासी लेखनी में आज विष्वास भर गया है इसलिए महादेव टोप्पो कहते हैं– ''वह धनुष उठाएगा प्रत्यांचा पर कलम चढाएगासाथ में बांसुरी और मादंर भी जरूर उठाएगाजंगल के हरेपन को बचाने के खातिर जंगल का कविमांडर बजाएगाचढ़ा कर प्रत्यांचा पर कलम।''[8]

पूर्वोत्तर भारत के आदिवासियों का आंदोलन अपनी पहचान का आंदोलन है। असम, मिजोराम, नागालैंड तथा मणिपुर का आदिवासी आंदोलन अपनी अस्मिता के साथ साहित्य को ढूँढ़ने का प्रत्यन कर रहा है। इस क्षेत्र में आज बोडो साहित्य लोकगीतों, लोककथाओं, गीतों और गाथाओं में देखने में मिलता है। कवियों तथा कथाकारों ने बोड़ो साहित्य की समृद्ध परपंरा को चलाया है। इन्होने अपनी संस्कृति को बचाये रखने में एक होकर आदोलन को सशक्त बनाया। लेकिन आज सरकार की नीतियों, विदेशी आक्रमणों, नक्सलवाद और धर्म के प्रचारकों ने इनकी संस्कृति को हड़पने और अपनी जड़े जमाने की कोशिष की हैं जिसका विरोध आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं में किया है उसके विरोध में ये कवि विद्रोह भी करते हैं ये कवि इसलिए भी विद्रोही हो गए हैं क्योंकि उनके प्रदेष में देषी और विदेशी घसुपैठ के कारण आदिवासी समाज स्वयं अपनी संस्कृति, परंपरा और आदिम मूल्यों को हेय दृष्टि से देखने लगा है अगर इन लोगों का साहित्य देखा जाए तो ये अपनी कविताओं में इस पीडा एवं संकल्प को अभिव्यक्त करते हैं पूर्वोत्तर का आदिवासी समाज आज भी अपनी मूल संस्कृति और भाशा को बचाकर रखने में कामयाब है। पाष्चात्य संस्कृति के प्रभाव एवं अपने समाज के ऊपर लादे गए संस्कारों पर आदिवासी कवि व्यंग्य रूपी शब्द बाणों से प्रहार करते हैं मेघालय के कवि 'पॉल लिंग दोह' अपनी 'बिकाऊ' है कविता में इस सांस्कृतिक पतन के कारणों अपनों को ही कोस रहे हैं–

''बिकाऊ है हमारा स्वाभीमानहमारी मान्यताएँहमारी सामूहिक चेतनाअतिरिक्त बोनस : ये सारी चीजें लुटाने के भाव उपलब्ध है।

विशेष : संपर्क के लिए टेलिफान नंबर की जरूरत नहीं हमारे एजंट हर कहीं है।''[9] अपनी पुरातन संस्कृति का ह्रास और विकृति को देखकर पूर्वोत्तर कवि तिलमिला उठते है कोई विपदा आने पर पड़ोसी देश के लोग उनको संरक्षण देते हैं उस संरक्षण और सहायता के बदले पड़ोसी देश के लोग इनके अंदर स्वयं के प्रति हीन भावना को जागृत करते हैं तथा अपनी जमीन के प्रति गद्दारी करने को मजबूर करते हैं।

महाराष्ट्र में लगभग 45 आदिवासी जनजातियाँ पायी जाती हैं जिनकी स्थिति ये है कि आजादी के 69 साल बाद भी अपनी आदिम अवस्था में जी रही हैं। सह्याद्री, सतपुड़ा, गोंडवाना में ये जनजातियां देखने को मिलती हैं शिक्षा के प्रचार प्रसार और सभ्य समाज की उपेक्षा ने इन्हे अपने आप का निरीक्षण करने और आदिवासी समाज का चिंतन करने को मजबूर किया है यही कारण है कि आज विभिन्न स्तरों पर आदिवासी साहित्य सम्मेलन, आदिवासी प्रशिक्षण–षिविर और साहित्यिक मैलो आदि का आयोजन किया जा रहा है। अडमान एवं निकोबार द्वीप समूह का इतिहास बहुत पुराना है। यहाँ की जनजातियाँ आज भी अपनी आदिम अवस्था में हैं अंग्रेजो ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों को अपराधिक दंड देने के लिए इन द्वीपों का प्रयोग 'कालेपानी' की सजा देने के लिए किया। ये ऐसे समुद्र द्वीप थे जिन पर निवास कर रहे जन समूहों का मीलों दूर अन्य समाज से किसी भी प्रकार का संपर्क नही था। काले पानी

की सजा काटने के लिए मार्च 1858 में सबसे पहले वहाँ पर लोग पहुँच तबसे वहाँ पर हिंदी भाशा का व्यवहार शुरू हुआ। ऐसे भू–भाग पर साहित्य लेखन की बात असंभव है, परंतु सन 1979 ई0 में नव परिमल' द्वारा प्रकाशित एक कृति यहां पर मिली है जिसमें हिंदी और अहिन्दी भाशी 22 कवियों की कविताएँ हैं। सुख–दुःख, आषा–निराषा, संघर्श, आक्रोश के रूप में इनकी कविताओं की संवेदना को देखा जा सकता है। एंडमान के आदिवासी की मनोदषा से विचलित होकर हरिराम मीणा का मन कह उठता है–

''समुद्रों से उठ रही हैं आग की लपटेंपष्थ्वी की सारी सभ्यता एक भीमकाय रोड़ रोलर की मानिंद लुढ़कती आ रही है हमारी जानिब और हम–बदहवास''[10] हरिराम मीणा के शोधपरक आलेखों से यह तथ्य सामने आया है कि मानगढ़ में 1500 आदिवासियों को अंग्रेजो ने राजस्थान और गुजरात के रजवाड़ो के साथ मिलकर गोलियों से भून डाला था। असम, सिक्किम, त्रिपुरा, नागालैंड आदि के कवियों की कविताएँ विदेशी आक्रमणों से त्रस्त गाँवो, कबीलों और समूहों के त्रस्त जीवन को उजागर करती हैं। उनका साहित्य इतिहास से प्रेरणा शक्ति और वर्तमान स्थिति से बोध लेकर अपनी जड़ो को खोजने का भरसक प्रयास करता है। आजादी के 69 साल बाद भी आदिवासियों की स्थिति ज्यों की त्यों उसमें जरा भी परिवर्तन नही आया है।

वर्तमान आदिवासी कविताएँ क्रांतिदर्षी है। उसमें अंधविश्वासाों के प्रति विरोध है। वर्तमान में आदिवासियों पर अस्तित्व के संकट के साथ पहचान की भी समस्या लगातार गहराती जा रही है। लोग उन्हे सामान्य मनुश्य के तौर पर नही बल्कि जंगली, वनवासी, असभ्य और संविधान में आरक्षित मनुष्य के रूप में परिभाशित करते हैं। आदिवासी समाज की इस विडम्बना पूर्ण स्थिति को महादेव टोप्पो की कविता 'त्रासदी' अभिव्यक्त करती है।

''इस देश में पैदा होने का
मतलब है–
आदमी का जातियों में बंट जाना
और गलती से तुम अगर हो गए पैदा
जंगल में
तो तुम कहलाओगे
आदिवासी–वनवासी–गिरिजन
वगैरह–वगैरह
आदमी तो कम से कम
कहलाओगे नहीं ही।''[11]

समकालीन कविता में असाधारण संतुलन के कवि मंगलेश डबराल अपनी कविता 'आदिवासी' में दिक् समाज द्वारा उन्हे मनुष्य न समझे जाने पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं मनुश्यता इस स्तर तक क्षीण हो चुकी है कि समाज आज कई स्तरों में बंट चुका है। वे तथाथिक मुख्य धरा के लोगों से सवाल पूछते है कि सर्वहारा पर किसी की दृष्टि क्यों नहीं जाती है? उनकी समस्याओं को मुखरता से अभिव्यक्ति क्यों नहीं मिलती है? एक अखबारी रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए वे सकारात्मक मुहिम पर बल देते हैं–

''अखबारी रिपोर्ट बतलाती हैं कि लोग उस पर शासन करते हैं देश के 636 में से 230 जिलो में उनका उससे मनुष्यों जैसा कोई सरोकार नहीं रह गया है उन्हें सिर्फ उसके पैरो तले की जमीन में दबी हुई सोने की एक नई चिड़िया दिखायी देती है।''[12]

कहा जा सकता है कि आदिवासी कविता जीवन की कविता है यह कल्पना और मनोरंजन की कथा मात्र नहीं है और साथ ही आदिवासी स्त्रियाँ भी नुमाईश की वस्तु नहीं है। वे दर्द सहने की आदि है। उनका जीवन कठोर संघर्ष की गाथाओं से भरा पड़ा है किन्तु मुक्ति के लिए उनका मन भी बेचैन है। इनकी दृष्टि अब उन तथाकथित सभ्य लोगों को पहचानने लगी है जो आदिवासी औरतों को सिर्फ वस्तु मानते हुए हैं और आदिवासी समाज को सस्ता मजदूर बनाकर उनकी संस्कृति, जंगल तथा जमीन को बड़ी ही चतुराई से हथियार कर उन्हें पलायन के लिए मजबूर कर देते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. रमणिका गुप्ता आदिवासी विकास से विस्थापन पृष्ठ सं0–12
2. हरिराम मीणा–अंडमान आदिवासियों को सभ्य बनाने की सलाह सुबह के इंतजार में काव्य संग्रह' पृष्ठ सं0 41–42
3. निर्मला पुतुल – 'अपने घर की तलाष में पृष्ठ सं0–31
4. आदिवासी स्वर और नयी षताब्दी सं0 रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाषन, संस्करण–2008 पृष्ठ सं0–98
5. नन्हें सपनों का सुख–सरिता बड़ाइक, प्रका, रमणिका फांउडेषन, संस्करण–2013 पृष्ठ सं0–108
6. नन्हे सपनों का सुख सरिता बड़ाइक, सं0 रमणिका गुप्ता, रमणिक फाउंडेशन, संस्करण 2013 पृष्ठ सं0–08
7. नगाड़े की तरह बजते षब्द–निर्मला पुतुल, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2005 पृष्ठ सं0–56
8. आदिवासी स्वर और नयी षताब्दी सं0 रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाषन, संस्करण–2008, पृष्ठ सं0–47
9. आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना–सं0 रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाषन, संस्करण–2013 पृष्ठ सं0–69
10. सुबह के इंतजार में– हरिराम मीणा, अक्षर षिल्पी प्रकाषन, संस्करण–2007, पृष्ठ सं0–34
11. रमणिका गुप्ता– 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी पृष्ठ सं0–49
12. मंगलेश डबराल –नये युग में षत्रु राधाकृश्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं0–17